गुरु गोविन्द सिंह

प्राणनाथ वानप्रस्थी

गुरु गोविन्दसिंह

(पंजाब सरकार से पुरस्कृत पुस्तक)

प्राणनाथ वानप्रस्थी

शिक्षा भारती, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य : तीन रुपये (3·00)

GURU GOVIND SINGH (Biography),
by Pran Nath Vanprashti

गुरु गोविन्दसिंह

जन्म

आज से पांच सौ वर्ष पहले वीरभूमि पंजाब में एक सच्चे संत का जन्म हुआ। इस महान् पुरुष ने भारतवर्ष ही नहीं, एशिया-भर में धर्म का डंका बजाया। हिन्दुओं और मुसलमानों, सभीको आपने प्रभु-भक्ति का उपदेश दिया।

अमर पुरुष गुरु नानकदेव जी की गद्दी पर नौवें गुरु तेगबहादुर जी एक सच्चे और त्यागी साधु के रूप में हमारे सामने आए। आप छठे गुरु हरिगोविन्द जी के सबसे छोटे पुत्र थे। बचपन में ही आप बहुत कम बोलते और कभी-कभी तो सारा-सारा दिन अकेले बैठ कर भगवान् का भजन करते। मनुष्य का परम कर्तव्य क्या है ? संसार के दुखों से कैसे छुटकारा पाया जाए— इन बातों पर आप सदा सोचा करते।

आप सदा अकेले रहकर सच्चे पिता की खोज किया करते। एक बार एक पंजाबी व्यापारी अपने देश से बहुत दूर एक जहाज़ में जा रहा था। उसके पास बेचने के लिए बहुत सामान था। समुद्र में एक

भयंकर आंधी आई। जहाज़ डूबने लगा। उस व्यापारी ने दोनों हाथ जोड़कर परम दयालु जगदीश्वर से प्रार्थना की, हे प्रभो! दया करो, रक्षा करो, मुझे बचा लो!' साथ ही साथ इस भले पुरुष ने प्रभु के सामने यह प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा जहाज़ किनारे लग गया तो मैं गुरु-गृह में पांच सौ स्वर्ण-मुद्राएं भेंट करूंगा। जहाज़ बच गया और वह व्यापारी सकुशल अपने देश को लौट आया।

व्यापारी पांच सौ स्वर्ण-मुद्राएं एक कपड़े में बांध गुरु की तरफ चल पड़ा और बाबा बकाले जा पहुंचा। पता लगा कि आठवें गुरु हरिकृष्ण जी का देहान्त हो चुका है और कई सज्जन अपने आप गुरु बनकर बैठे हुए हैं। वह बड़े सोच में पड़ा। वह एक-एक करके सभी बनावटी गुरुओं के पास गया, परन्तु किसीसे भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। वह ढूंढ़-ढूंढ़कर थक गया। किसीने बताया, 'भाई! तेगू नामक का एक साधु है, उसके पास भी जा देखो।' सच बात तो यह है कि सच्चे साधु अपने-आपको छिपाकर रखते हैं, ताकि कोई पुरुष उनके पास न आए और उनके भजन में बाधा न पड़े।

किसीने ठीक कहा है, 'ढूंढ़नेवाले ढूंढ़ ही लेते हैं। लगन सच्ची होनी चाहिए।'

हां, तो वह व्यापारी पत्थरों की चोट सहकर भी संत तेगबहादुर की शरण में जा पहुंचा। उसने चरण छूकर प्रणाम किया और आशीर्वाद लेकर चलने लगा। महात्मा बोल उठे, 'भाई ! हमारी पांच सौ मुद्राएं कहां हैं ?' उस व्यापारी ने बड़े प्रसन्न मन से वे मुद्राएं उन्हें भेंट कीं और लौट पड़ा। उसने गांव में आते ही शोर मचा दिया कि गुरु मिल गए। बड़े-बड़े लोग इकट्ठे होकर उनकी सेवा में पहुंचे और बार-बार प्रार्थना की कि आप गुरु-गद्दी संभालें। परन्तु उस सच्चे सन्त को संसार से क्या लेना था ? अन्त में माता नानकी जी के बहुत विवश करने पर आप न नहीं कर सके और 44 वर्ष की आयु में गुरु-गद्दी पर बैठे।

इस महात्मा का विवाह तो 11 वर्ष की आयु में ही हो चुका था, परन्तु उसे सांसारिक भोगों से क्या लेना था ! गद्दी पर बैठने के बाद लोगों ने बहुत कहा-सुना कि महाराज, कोई सन्तान भी होनी चाहिए। इसपर इस संत ने और इनकी धर्मपत्नी गूजरी जी ने बड़े-बड़े उपवास, व्रत और यज्ञ किए। इस प्रकार तप करके इन्हें गोविन्दसिंह सरीखा पुत्र-रत्न मिला।

देवी गूजरी जी को पटना छोड़कर वे आसाम की यात्रा करने चले गए। इन्हीं दिनों पुत्र का जन्म हुआ। पौष सुदी सप्तमी, संवत् 1723 विक्रमी (22 दिसम्बर,

सन् 1666) के दिन शनिवार को आधी रात के समय बालक का जन्म हुआ। पुत्र का नाम गोविन्दराय रख गया।

पिता का बलिदान

पांच साल की आयु तक आप पटना नगर में ही रहे। पटना की महारानी प्रतिदिन आपके दर्शन करने आती और सुन्दर मुखड़े के दर्शन पा निहाल हो जाती। पिता के बुलाने पर आप आनन्दपुर चले गए। छोटी आयु में ही आपने तलवार, भाला, बर्छा और तीर चलाना सीख लिया। अपने साथी बालकों के साथ खेलते समय आप दो दल बना लेते और युद्ध का अभ्यास करते। जो दल जीतता उसे मिठाई बांटते।

इन दिनों भारत में मुसलमानों का राज्य था। वे हिन्दुओं को बहुत सताया करते थे। एक बार कश्मीर के कुछ हिन्दू पण्डित गुरु तेगबहादुर जी की शरण में आए और रो-रोकर बोले, 'महात्मन्! हमारे दुःखों का कोई अन्त नहीं है। हमारा धर्म, हमारी बहू-बेटियां और धन-सम्पत्ति दिन-दहाड़े लूटे जाते हैं। कृपा करके हमारी रक्षा कीजिए।'

यह सुनकर गुरु साहब कुछ सोचकर बोले, 'यदि कोई महान् पुरुष अपना बलिदान दे, तभी कुछ

हो सकता है।' इसपर पास ही खेलते हुए नौ वर्ष के बालक गोविन्दराय ने पिता के पास जाकर दोनों हाथ जोड़कर कहा, 'पूज्य पिताजी ! इस समय आपसे बड़ा पुरुष कौन है, जो अपनी बलि देकर जाति की रक्षा करे !'

गुरु तेगबहादुर जी ने पुत्र को गोद में उठा लिया, प्यार किया और उन कश्मीरी पण्डितों से बोले, 'ठीक है, तुम लोग सम्राट् औरंगज़ेब को जाकर कह दो कि यदि हमारा गुरु मुसलमान हो जाए तो हम सभी

मुसलमान हो जाएंगे।'

कश्मीरी पण्डित चले गए। गुरु तेगबहादुर जी अपनी गद्दी अपने पुत्र को सौंपकर पांच शिष्यों को लेकर धर्म-प्रचार करते हुए दिल्ली जा पहुंचे। वे मुसलमान सम्राट् से मिले। औरंगज़ेब ने कहा, 'यदि आप मुसलमान हो जाएं, तो मैं आपका शिष्य बन जाऊंगा।' गुरु साहब हंसकर बोले, 'मुझे लालच देते हो, मैं तो उस अकाल पुरुष की आज्ञा में हूं।'

जब यह दांव न चला, तो उसने गुरु साहब और उनके शिष्यों को बड़े-बड़े कष्ट दिए। भाई मतिदास को आरे से चिरवाकर दो टुकड़े कर दिए। भाई दयालदास को खौलते हुए तेल की कढ़ाई में डलवा दिया।

इस तरह दो मास बीत गए। जब औरंगज़ेब किसी तरह भी सफल न हुआ, तो वह क्रोध से आग-बबूला हो गया। उसने गुरु साहब को बुलवाया और कहा, 'आप यदि मेरी बात नहीं मानेंगे, तो आपका सिर कटवा दूंगा।' गुरु तेगबहादुर जी ने गंभीर होकर उत्तर दिया, 'तू किस बात का गर्व करता है! यह शरीर आज तक किसीका नहीं बना रहा। तेरे जैसे न जाने संसार में कितने आए और चले गए। यह आत्मा अमर है। इसका तू कुछ नहीं बिगाड़ सकता।'

दिन ढल रहा था। मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी संवत् 1732 का दिन था। चांदनी चौक के ठीक बीचोंबीच गुरु तेगबहादुर जी को ले जाया गया। यहां एक कुआं है, यहीं पर इस महान् पुरुष ने स्नान किया और भगवान् को लाख-लाख धन्यवाद दिया। इस समय लाखों लोग इस महान् बलिदान को देखने के लिए इकट्ठे हुए। औरंगज़ेब की आज्ञा से गुरु तेगबहादुर का सिर काट दिया गया। मुसलमान इतिहासकार लिखते हैं कि उस समय अंधेरा छा गया, भूमि कांपी और दिन को ही तारे दिखाई दिए।

इस गड़बड़ी में भाई जीवन ने गुरुजी का सिर उठाया और उसे लेकर आनन्दपुर जा पहुंचा। उधर दिल्ली में नगर का कोना-कोना छाना गया, परन्तु गुरु साहब के सिर का कोई पता न लगा।

अपने पिता का सिर पाकर बालक गुरु गोविन्द राय ने शास्त्र-विधि से सुगन्धित सामग्री के साथ उनका दाह-संस्कार किया। फिर सब शिष्यों को इकट्ठा किया और कहा, 'है कोई माई का लाल, जो गुरु साहब का शव दिल्ली से ला सके।'

इसपर एक वृद्ध पुरुष उठकर बोला, 'गुरुजी! हम नीच जाति के हैं। हमपर आपके बड़े उपकार हैं। यह कार्य मैं और मेरा पुत्र करेंगे।' गुरु साहब का

आशीर्वाद पाकर वह वृद्ध अपने पुत्र को साथ ले दिल्ली चल पड़ा।

इधर दिल्ली के हिन्दुओं ने सम्राट् औरंगज़ेब से गुरु साहब का शव मांगा, ताकि उसे हिन्दू धर्म की रीति के अनुसार अग्निदेव की भेंट कर दिया जाए। औरंगज़ेब ने कहा, 'नहीं, ऐसे पुरुष का शव न तो जलाना चाहिए और न ही गाड़ना चाहिए, इसे तो सड़ते रहने देना चाहिए।'

पिता-पुत्र चलते-चलते दिल्ली के पास पहुंच गए। यहां उन्हें एक गाड़ीवान मिला, जो भला पुरुष दीखता था। उन्होंने सोचा—भले लोगों से कभी हानि नहीं होती। उन्होंने उसे बताया कि हम किस कार्य के लिए आए हैं। वह बोला, 'मैं इस नगर का कोना-कोना जानता हूं। मुझे यह भी पता है कि गुरु साहब का शव कहां पड़ा है। मैं आपकी पूरी-पूरी सहायता करूंगा।'

आधी रात होने पर पिता-पुत्र गाड़ीवान के साथ उस स्थान पर जा पहुंचे। प्रभु के खेल, उस समय वहां कोई पहरेदार न था। गुरु साहब के शव को धीरे से उठाकर गाड़ी में लाद लिया गया।

कहीं सैनिकों को पता चल गया तो वे आनन्द-पुर भी पहुंच सकते। तब यह निश्चय किया गया

कि पिता-पुत्र में से कोई यहां लेट जाए और उसका सिर काट दिया जाए, ताकि सैनिक धोखे में आ जाएं और दूसरा इस बीच गुरुजी का शव लेकर दूर निकल जाए। इसपर पिता-पुत्र में झगड़ा हो गया। पुत्र कहे, 'मुझे बलिदान होने दो।' पिता कहे, 'नहीं, मैं वृद्ध हूं, मेरा सिर काटो।' कुछ समय बीत गया, कोई निर्णय न हुआ।

यदि कोई सैनिक आ गया तो हमारा किया-कराया मिट्टी में मिल जाएगा। यह सोच पिता ने पुत्र को डांटा और तलवार से अपना सिर काट डाला और भूमि पर लुढ़क गया। पुत्र ने पिता के शव को वहीं रहने देकर चरण छुए और सिर को कपड़े में बांध लिया।

अब गाड़ीवान और यह नवयुवक चलते-चलते कई दिनों में आनन्दपुर जा पहुंचे। बालक गुरु गोविन्दराय और सहस्रों लोगों ने उस महान् गुरु के शव और उस वृद्ध पुरुष के सिर कोश्रद्धांजलि भेंट की और दाह-संस्कार किया।

यह है गुरु गोविन्द जी के पिता और उनके साथियों के बलिदान की अमर गाथा!

अपने पिता को धर्म की वेदी पर बलिदान कर गुरु गोविन्दसिंह ने एक सभा बुलाई। सब लोगों के

सामने उस नो वर्ष के बालक गुरु ने तलवार हाथ में लेकर गरजकर कहा, 'साथियो ! आज वह दिन आ गया है कि हम सब मिलकर व्रत लें कि जब तक हमारे शरीर में रक्त की एक बूंद बाकी है, मुगल सम्राट् को चैन से नहीं बैठने देंगे और हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए अपना तन, मन, धन, सब कुछ लुटा देंगे। पूज्य पिता गुरु तेगबहादुर जी और दूसरे साथियों का बलिदान अवश्य रंग लाएगा। बोलो ! आज मेरे साथ मिलकर कौन-कौन से वीर यह प्रतिज्ञा करते हैं।' देखते ही देखते सभा में सहस्रों तलवारें चमक उठीं और 'सत श्री अकाल' के नाद से आकाश गूंज उठा।

यहां पर गुरु साहब ने यह घोषणा भी कर दी कि आज से जो भी मुझे मिलने आए, अपने साथ कोई शस्त्र, घोड़ा या अन्य युद्ध का सामान लेकर ही आए।

भगवती दुर्गा

गुरु गोविन्दराय जी का विवाह देवी सुन्दरी जी से आषाढ़ वदी 7, संवत् 1745 को हुआ। इनके चार पुत्र हुए :

नाम	जन्म दिन
अजीतसिंह	23 माघ, संवत् 1743
जोरावरसिंह	7 चैत्र, संवत् 1747
जुझारसिंह	5 मार्ग शीर्ष, संवत् 1751
फतहसिंह	फाल्गुन सुदी 7, संवत् 1755

गुरु गोविन्दराय जी ने अच्छे-अच्छे पण्डितों को अपने पास रखा। उन्होंने छोटी आयु में ही अच्छी तरह संस्कृत पढ़ना-लिखना सीख लिया। धर्मग्रन्थों को भी मथ डाला। आपने बहुत-से पंजाबियों को विद्या पढ़ने के लिए काशी भेजा। आप चाहते थे कि पंजाब के लोग अच्छे-अच्छे विद्वान बन जाएं। इस तरह आपके यत्न से सहस्रों लोग पढ़-लिखकर विद्वान बन गए।

प्रतिदिन सायंकाल को पण्डित कालिदास जी रामायण और महाभारत की कथा करते थे। जहां कहीं रामचन्द्र की पितृभक्ति, भरत का भ्रातृप्रेम, लक्ष्मण का तपस्वी जीवन, भीष्म का बाल-ब्रह्मचर्य, युधिष्ठिर का सत्यवादी होना, अर्जुन की शूर-वीरता और कृष्ण के गुणों की बात आती, तो गुरु साहब बड़े ध्यान से सुनते और धन्य-धन्य कह उठते। वे कभी-कभी बड़े दुःख में भर जाते और सोचा करते, 'राम और कृष्ण

की सन्तान को आज क्या हो गया। कैसे इस जाति का उद्धार हो ?'

एक दिन पं० कालिदास ने कहा, 'गुरुजी ! यदि आप किसी देवी-देवता को प्रसन्न कर लें, तो आपको दैवी शक्ति प्राप्त हो जाएगी। तभी आपको इस महान् कार्य में सफलता मिलेगी।'

गुरुजी जानते थे कि यह सब ढोंग है, सहारा तो उस अकाल पुरुष का ही होना चाहिए, परन्तु उन्होंने सोचा कि पण्डित के कहे अनुसार करना ही चाहिए। इससे हमारे भोले-भाले हिन्दू भाइयों के सामने पाखंड का भंडा फूट जाएगा और उन्हें धर्म के सच्चे मार्ग का पता लग जाएगा।

पण्डितजी के कहने से भगवती दुर्गा को प्रसन्न करने के लिए महान् यज्ञ का प्रबंध किया गया। बड़ी-बड़ी दूर के पण्डितों को बुलाया गया। सुगन्धित, औषधिवाली सभी तरह की सामग्री बनवाई गई और घी का भी भरपूर प्रबन्ध किया गया। आनन्दपुर के पास सात कोस पर नयनादेवी का एक मन्दिर है। वहीं पर चारों ओर केले के वृक्षों के खम्भे गाड़े और बड़े-बड़े सुन्दर फूलों की बेलों से उस स्थान को खूब सजाया गया। बड़ा सुन्दर यज्ञ-कुण्ड बनाया गया। एक सौ आठ ब्राह्मण पाठ करने लगे। वेद-मंत्रों की

पवित्र ध्वनि से आकाश गूंज उठा। नित्य खुले हाथों घी और सुगन्धित सामग्री जलाई गई। आसपास के गांवों और दूर-दूर से सहस्रों लोग दर्शन करने आए। यह यज्ञ चालीस दिन तक चला।

अन्तिम दिन गुरुजी ने पण्डित कालिदास से पूछा कि भगवती दुर्गा कब प्रकट होगी? वह हाथ जोड़कर बोला, 'महाराज! भगवती मनुष्य की बलि चाहती है।' गुरुजी ने उसी समय तलवार निकाल ली और बोले, 'पण्डितजी? आपसे अच्छा पुरुष इस समय कहां मिलेगा, आप ही अपनी बलि देकर पुण्य कमाइए।' अब तो पण्डितजी के काटो तो खून नहीं। वह थर-थर कांपने लगा। वह बड़ा घबरा गया। अन्त में बड़ी कठिनाई से इतना ही कह पाया, 'महात्मन्! मुझे स्नान आदि तो कर लेने दीजिए।' गुरुजी ने कहा, 'अच्छा।'

वह पण्डित जितनी शीघ्रता से भाग सकता था भाग गया। गुरुजी ने बहुत देर तक उसकी राह देखी, परन्तु उसे अब क्यों लौटना था!

गुरुजी यज्ञ-मंडप में पधारे। यज्ञ पूर्ण हुआ। लोगों ने पूछा, 'देवी प्रकट हुई?' गुरु साहब ने अपनी तलवार निकाल ली और बोले, 'यही भगवती दुर्गा है।'

सब पण्डितों को दान-दक्षिणा से संतुष्ट किया गया। लोग भी अपने-अपने घरों को लौट गए।

पांच प्यारे

चैत्र मास संवत् 1755 में गुरु साहब ने अपने शिष्यों और भक्तों को निमंत्रण भेजे कि पूर्णिमा के दिन आनन्दपुर में बड़ा भारी उत्सव होगा। आप सब लोग पधारें। उन लोगों के ठहरने के लिए तंबू, कनात आदि का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया गया। बड़ा भारी मंडप सजाया गया। देखते ही देखते सहस्रों लोग दूर-दूर से आकर इकट्ठे हो गए।

पूर्णिमा की प्रातःकाल को ही सब लोग मंडप में इकट्ठे हुए। गुरु गोविन्दराय जी बड़े सुन्दर कपड़े पहन, नंगी तलवार हाथ में ले सभा-भवन में आ पहुंचे। उन्होंने ऊंचे स्वर में कहा, 'भाइयो ! परीक्षा की घड़ी आ पहुंची है। आज भगवती दुर्गा बलिदान मांगती है, बोलो, कौन वीर पुरुष अपना सिर देने को तैयार है ?'

गुरु साहब की दृढ़ और गम्भीर वाणी सुनकर सभी लोगों के हृदय कांप उठे। लोग इधर-उधर सिर छिपाने लगे। कईयों ने समझा, गुरु साहब पागल हो गए हैं। गुरु साहब ने तीन बार अपने शब्दों को दोहराया। इसपर तीस वर्ष के लाहौर-निवासी भाई दयाराम जी

खत्री आगे बढ़े। गुरु साहब उसे पकड़कर एक अलग तंबू में ले गए। लोगों ने देखा कि तंबू के बाहर रक्त की धारा बह निकली है। कुछ समय में गुरु साहब भी रक्त से सनी तलवार लिए बाहर निकले।

सभा-मंडप में आते ही फिर गुरु साहब ने गरजकर कहा, 'अभी और सिर चाहिए। है कोई माता का लाल, जो अपना बलिदान देकर जाति की रक्षा करे?' इसपर तैंतीस वर्ष का दिल्ली-निवासी भाई धरमदास जाट आगे बढ़ा। इसकी भी वही दशा हुई। तीसरी बार गुरु साहब की मांग पर छतीस वर्ष का द्वारिका-निवासी भाई मोहकमचन्द धोबी उठा। चौथी बार सैंतीस वर्ष का बीदर-निवासी भाई साहबचन्द नाई आगे बढ़ा। पांचवीं बार अड़तीस वर्ष के जगन्नाथ-निवासी भाई हिम्मतराय कुम्हार ने आगे बढ़कर गुरु साहब की आज्ञा का पालन किया।

थोड़ी देर बाद लोगों ने देखा कि गुरु साहब और वही पांचों सज्जन जीते-जागते सुन्दर वस्त्र पहने सभा-स्थान पर पहुंच गए। लोगों के आश्चर्य का अन्त न रहा। बात यह थी कि गुरु साहब ने पहले ही उस तंबू में पांच बकरे लाकर बांध दिए थे। एक-एक करके उन्हींका सिर काटा गया था। अब तो लोग लगे पछताने अब क्या हो सकता था! फिर भी कइयों ने आगे बढ़कर गुरुजी

के चरण पकड़ लिए।

गुरु गोविन्दसिंह जी ने कहा, 'भाइयो! जो लोग मुझे पागल समझकर इधर-उधर हट गए थे, वे मनसुख कहलाएंगे। जो बैठे रहे वे सनमुख और जिन्होंने सिर देना स्वीकार किया वे गुरुमुख नाम से संसार में प्रसिद्ध होंगे। आज से तुम्हारा नया जन्म हुआ है। आप लोगों के नाम के पीछे सिंह शब्द रहेगा।'

अगले दिन गुरुजी ने शुद्ध जल में खांडा फेरकर उसे अमृत बनाया। खांडा फेरते समय उन्होंने गुरुओं की पवित्र वाणी का पाठ किया। वह अमृत उन पांच प्यारों को पिलाकर उन्हें 'खालसा' बनाया। बाद में उनसे अमृत बनवाकर स्वयं पिया और औरों को पिलवाया। इस प्रकार सिख-धर्म की नींव रखी गई। गुरुजी ने हर सिख को आज्ञा दी कि वह पांच निशान अवश्य रखे—कृपाण, कड़ा, केस, कंघा और कच्छा। इन आज्ञाओं को जीवन-भर पालना है। किसी तरह की जात-पांत का भेद नहीं मानना। सभी सिक्खों को अपना भाई समझना। गुरुजी ने इक्कीस शिक्षाओं का उपदेश भी दिया। गुरुजी चाहते थे कि हिन्दू जाति माला के मनकों की भांति एक सूत्र में बंध जाए।

सहस्रों लोग आ-आकर सिख बनने लगे। गुरु साहब उन लोगों में से योग्य पुरुषों को अपने पास
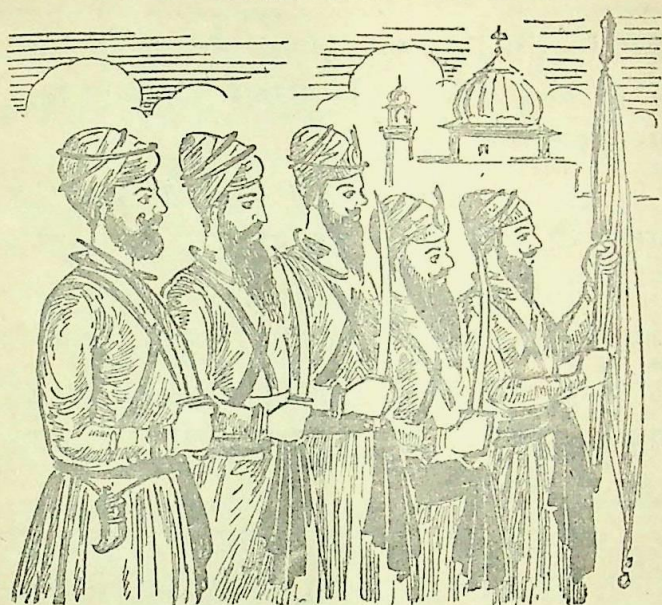
रख लेते और उन्हें सैनिक बनाते। करते-करते गुरुजी के पास एक वीर सेना जुट गई, जो हर समय गुरुजी के संकेत पर मर मिटने को तैयार थी।

उनसे मिलने जो भी आता, कोई न कोई हथियार लाता ही। आसाम का राजा और दूसरे पहाड़ी राजाओं ने भी गुरु-सेवा में आकर बड़े-बड़े उत्तम हथियार और घोड़े भेंट किए। इस प्रकार गुरुजी के पास शस्त्रों का बहुत बड़ा भंडार हो गया।

प्रतिदिन लंगर चलता। जो भी आता पेट भरकर भोजन पाता और कड़ाह (हलुआ) प्रसाद पाता।

साथ ही साथ गुरुजी के स्थान पर धर्म-चर्चा भी चलती। लोगों को ईमानदारी और परिश्रम का जीवन बिताने पर गुरुजी बहुत बल देते थे।

एक बार संवत् 1742 में होली के अवसर पर गुरुजी की सेवा में आ रहे पोठोहार के भक्तों को रास्ते में ही मुसलमानों ने लूट लिया। आनंदपुर में जब वे लोग वहां पहुंचे, तो गुरुजी ने कहा, 'आप लोग शस्त्रविद्या नहीं जानते, इसीलिए आपकी यह दशा हुई। अब आप आज से ही यह विद्या सीखो, तभी अपनी रक्षा कर सकोगे।'

एक बार एक देवी आपकी सेवा में पहुंची और बोली, 'गुरुजी ! मेरी सहायता कीजिए। मेरे पति ने कुछ समय के लिए समाधि ली थी, मेरे मना करते-करते कई लोगों ने उसे जला डाला और धन-सम्पत्ति लूट ली।'

गुरु साहब उस विधवा का दुःख न देख सके। वे पांच सौ घुड़सवारों को साथ ले देहरादून जा पहुंचे। अपराधियों को उचित दंड देकर उसके पति बाबा रामराय की सम्पत्ति का प्रबन्ध एक सज्जन पुरुष को सौंप लौट आए।

आपस की फूट

गुरु गोविन्दसिंह जी के पास प्रायः पहाड़ी राजा

मिलने आया करते थे। गुरुजी उन्हें समझाते, 'भाई, आप सब राजा लोग एक संगठन में बंध जाओ। आपसी झगड़े और स्वार्थों को छोड़ एक होकर मातृभूमि को स्वतन्त्र कराओ, ताकि हमारा देश फले और फूले।'

अब तक गुरुजी ने लोहागढ़, फतहगढ़, फूलगढ़, आनंदगढ़ नामक चार दुर्ग बनवा लिए थे।

पाठक भूले न होंगे कि गुरु साहब के पास जो भी आता था, कोई न कोई शस्त्र या युद्ध का सामान ही लेकर आता था। एक बार आसाम के राजा ने आपको एक सफेद हाथी भेंट किया। यह हाथी तलवार चलाता, चीजें उठा लाता, जूता झाड़ देता, चंवर करता और रात के समय सूंड़ में मसाल लेकर चलता। जो भी गुरुजी के पास आता, वह इस हाथी का कार्य देख दांतों तले अंगुली दबाता।

एक बार पंजाब के पहाड़ी प्रदेश बिलासपुर का राजा गुरुजी की सेवा में आया। उस हाथी को देख उसके मुंह में पानी भर आया। उसने गुरु साहब से कहा कि आप एक लाख मुद्राएं ले लें, और यह पशु मुझे दे दें।

गुरुजी ने कहा, 'भाई! यह मेरी सवारी के काम आता है। यह नहीं दिया जा सकता।' वह राजा लौट गया। कुछ दिनों बाद उसके पुत्र का विवाह श्रीनगर के राजा फतहशाह की पुत्री से होना निश्चित हुआ।

उसने इस शुभ समय के लिए हाथी मांग भेजा। गुरुजी ने नहीं दिया।

राजा फतहशाह गुरुजी का भक्त था। गुरुजी ने पांच सौ सवारों के साथ उसको टीका भेजा। जब राजा भीमचन्द को पता लगा तो उसने खुले शब्दों में कह दिया कि यदि आप गुरु साहब का टीका लेंगे, तो मैं अपनी बारात लौटा ले जाऊंगा। श्रीनगर का राजा विवश हो गया। उसने गुरुजी का टीका लौटा दिया।

दीवान नन्दचन्द, जो गुरु साहब का टीका लेकर गया था, उसने इसे गुरुदेव का अपमान समझा और अपने सैनिकों को लूट मचाने की आज्ञा दे दी। इस लूट-पाट में कई राजाओं को चोटें आईं। दीवान नन्दचन्द के लौट जाने पर सब राजा इकट्ठे हुए और वे दस सहस्र सेना सजाकर बदला लेने के लिए गुरु साहब की ओर बढ़े।

उधर जब दीवान नन्दचन्द लौटा तो गुरु साहब ने कहा, 'शुभ कार्य में बाधा डालकर तुम लोगों ने ठीक नहीं किया।' इन दिनों गुरु साहब पावटा ग्राम में रहते थे। यह स्थान राजा मेदिनीप्रकाश ने उन्हें दिया था। गुरु के पास केवल दो सहस्र सैनिक थे। इनमें 500 तो नागे थे, जो खाने-पीने को ही धर्म समझते। मृत्यु सामने खड़ी देख वे तो एक-एक करके

खिसक गए। 500 पठान सैनिक भी गुरुजी के पास थे। ये सैनिक मुगल सम्राट् के विद्रोही थे। बुद्धूशाह फकीर के बार-बार कहने पर गुरु साहब ने इन्हें अपने पास रख लिया था। जब इन पठानों ने देखा कि गुरु साहब तो युद्ध में हार ही जाएंगे, तो वे चुपके से शत्रु से जा मिले। गुरु साहब ने इस बात की सूचना बुद्धूशाह के पास भेज दी।

अब गुरु साहब के पास एक सहस्र वीर सेना बची जो उनपर मर-मिटने को तैयार थी। बैसाख बदी 12, संवत् 1742 को गुरुजी आगे बढ़ भिनगानी ग्राम में जा डटे। जमसागिरी नदी के आमने-सामने दोनों सेनाएं एक-दूसरे पर टूट पड़ीं। सिख सैनिक बड़ी वीरता से लड़े। दो दिन तक घमासान युद्ध हुआ। तीसरा पहर होते-होते सिख सैनिक थक गए, इतने में सैयद बुद्धशाह दो सहस्र सवार लेकर गुरुजी की सहायता को आ पहुंचा। तीसरे दिन गुरुजी ने आज्ञा दी कि चुन-चुनकर शत्रु सेना के सेनापतियों को मार गिराओ। तीन पठान सेनापति कालेखां, हयातखां, नयाबतखां और राजा हरिचन्द सिख वीरों के हाथों मारे गए। राजा केसरीचन्द और सुखदेवचन्द घायल हो भाग निकले।

सिख सेना ने आगे बढ़ भागती सेना का कई कोस

तक पीछा किया और भारी मात्रा में खेमे, युद्ध में सामग्री और खान-पान का सामान इस युद्ध में लूटा। गुरु साहब की ओर के भी कई वीर मारे गए और बुद्धूशाह का पुत्र भी काम आया। गुरु साहब सैयद बुद्धूशाह को गले लगाकर मिले और उसे अपनी आधी पगड़ी और बहुत-सी मूल्यवान वस्तुएं भेंट कीं।

माता के बहुत कहने-सुनने पर गुरु साहब फिर आनंदगढ़ लौट आए और राजा का स्थान छोड़ दिया।

गुरुजी का बल देखकर पहाड़ी राजाओं ने उनसे मित्रता कर ली। परन्तु हृदय में खोट भरा था। इन राजाओं ने मुगल सम्राट् को कर देना बन्द कर दिया। इन्हीं दिनों दक्षिण में वीरश्रेष्ठ शिवाजी और राजपूताने में राजा जयसिंह मुगलराज्य की जड़ों को खोखला कर रहे थे। फिर भी मुगल सम्राट् ने मियांखां, अलफखां और जुलफिकारखां को सेना देकर पहाड़ी राजाओं को विजय करने भेजा। इन्होंने आते ही चंबा, नाहन और नालागढ़ के राज्यों में लूट मचा दी। दो पहाड़ी राजा कृपालचन्द और दयालचन्द भाइयों से विश्वासघात कर शत्रु से जा मिले। इधर गुरु साहब भी सेना सजाकर यवनों पर चढ़ दौड़े। उधर हनगढ़ और हरिपुर के हिन्दू राजा भी शत्रु से जा मिले। गुरु साहब अपने समय के एक अनोखे

तीरन्दाज थे। उनका एक-एक तीर कई-कई शत्रुओं के सिर काट लेता था। धर्म और देश पर मर मिटनेवाले दीवानों के सामने मुगल सेना के छक्के छूट गए और वह भाग खड़ी हुई। गुरु साहब की सेना विजय के ढोल पीटती आनंदगढ़ लौट आई।

हार का समाचार पा लाहौर का सूबेदार दिलावर खां संवत् 1745 के भाद्रपद मास में सेना एकत्र कर पहाड़ी राजाओं पर जा टूटा। अपने पुत्र रुस्तमखां को गुरु साहब को विजय करने भेजा। गुरु साहब पहले ही तैयार थे। भयंकर युद्ध हुआ। रात होने पर दोनों सेनाएं विश्राम करने लगीं। प्रभु की विचित्र लीला! नदी में ऐसी भयंकर बाढ़ आई कि मुगल सेना पानी में डूबने लगी। उनके तम्बू, युद्ध-सामग्री और खान-पान का सामान सब बह गया। बहुत-से सैनिक तो बह गए और दूसरों ने भाग-भागकर अपनी जीवन-रक्षा की। गुरु साहब का शिविर ऊंचे टीले पर था, इसलिए उन्हें आंच तक नहीं आई।

उधर दिलावरखां ने फिर गुलाम हसनखां को भेजा। राजा गोपालसिंह गुलेरी और गुरुजी की सेना इतनी वीरता से लड़ी कि शत्रु को भागकर ही जान बचानी पड़ी।

एक बार फिर दिलावरखां ने आक्रमण किया।

बहलात ग्राम के पास भीषण युद्ध हुआ । इस युद्ध में भी बड़े-बड़े मुगल सरदार काम आए और विजय का सेहरा सिख वीरों के सिर पर बंधा ।

बार-बार की हार से मुगल शासक घबरा गए । इस बार राजकुमार मुअज्जम बहुत बड़ी सेना लेकर आया । उसने आते ही पहाड़ी राजाओं पर चढ़ाई कर दी । पहाड़ी राजा हार गए । उनके राज्यों में लूट मचा दी गई । सिखों की ओर भी एक मुगल सरदार भेजा गया । सिख सेना बहुत कम थी । इसलिए आनंदपुर के दुर्ग को चारों ओर से बन्द कर लिया गया । रात के अंधेरे में गुरु साहब के वीरों ने ऐसा छापा मारा कि सैकड़ों शत्रु सैनिक सोते-सोते मार डाले गए । बहुतों ने भागकर जान बचाई। इस युद्ध में भी सिख विजयी हुए और मुगल सेना की युद्ध-सामग्री की खुले हाथों लूट हुई । सिखों ने आठ कोस तक उनका पीछा किया और विजय के ढोल बजाते हुए आनंदगढ़ लौट आए ।

पहाड़ी हिन्दू राजाओं को एक साधु की बढ़ती हुई शक्ति न भायी। वे देशद्रोही राजा हिन्दू जाति के रक्षक श्री गुरु गोविन्दसिंह जी के विरुद्ध हो गए। दूसरों के पांव चाटते-चाटते उनकी बुद्धि इतनी फिर गई कि वे अपने धर्म और जाति के रक्षक को ही मिटाने पर तुल गए ।

इस घर को आग लग गई, घर के चिराग से ।

उन्होंने भारी तैयारी कर बीस सहस्र सेना एकत्र कर ली । उधर गुरु साहब के पास भी आठ सहस्र वीर देशभक्त सेना जुट गई थी ।

पहाड़ी राजाओं ने अजमेरचन्द विलासपुरिया की कमान में आनंदगढ़ को जा घेरा । दिन-भर तोपें आग बरसाती रहीं । उधर दुर्ग के भीतर से गोलियों और तीरों की बौछार होती रही । रात होने पर जब देशद्रोही सेना थककर सो गई, तो सिख वीर दुर्ग से बाहर निकल आंधी की गति से उनपर चढ़ दौड़े । जब तक वे संभलते, गुरु साहब के वीर सैनिक दुर्ग में लौट आते । इस तरह कई बार वीर सेना ने दुर्ग से निकल शत्रु को भारी हानि पहुंचाई । एक दिन तो सिख सेना ने इतने बल से आक्रमण किया कि शत्रु को लेने के देने पड़ गए । वे हार खाकर युद्धभूमि से भाग खड़े हुए ।

पहाड़ी राजा फिर एक बार नवाब सरहिन्द की सहायता से संवत् 1758 में गुरु साहब पर चढ़ दौड़े । मार्गशीर्ष मास की यह घटना है । बड़ा भयंकर युद्ध हुआ । 15 दिन बीत गए । न ही मुसलमान सेना दुर्ग तोड़ पाई और न ही गुरु के वीरों को विजय मिली । दुर्ग में भोजन-सामग्री समाप्त हो चली । और कोई चारा

न देख गुरु साहब अपने सैनिकों को साथ ले व्यूह बनाकर दुर्ग से बाहर निकल पड़े। मारते-काटते ये वीर देश-भक्त सतलुज नदी पार कर बसूली ग्राम में जा पहुंचे। यवन सेना के लाख यत्न करने पर भी गुरु साहब इनकी पकड़ में नहीं आए, परन्तु उन्होंने आनंदगढ़ लूट लिया।

बसूली का राजा गुरुजी का भक्त था। उन्होंने गुरु साहब की खूब आवभगत की। यहां कई दिन तक सिख सेना ने विश्राम किया।

अपनी सेना बढ़ाते हुए श्री गुरु गोविन्दसिंह जी जंबूर ख्यालसर होते हुए आषाढ़ मास संवत् 1759 को कुरुक्षेत्र आ विराजे। जो भी आता, गुरुजी के पवित्र दर्शनों और उपदेशों का लाभ लूटता। सहस्रों लोग धर्म में प्रविष्ट हुए। अच्छे-अच्छे उत्साही नवयुवकों को गुरुजी अपनी सेना में मिलाते भी रहे।

सूर्यग्रहण का मेला देखकर गुरु साहब चमकौर होते हुए आनंदगढ़ आ विराजे। मार्ग में एक-दो स्थान पर मुगल सेना से मुठभेड़ हुई, परन्तु उन्होंने मुंह की खाई।

बड़े पुत्रों का बलिदान

पंजाब के हिन्दू पहाड़ी राजाओं ने मुगल सम्राट् औरंगज़ेब को गुरु गोविन्दसिंह जी के विरुद्ध खूब भड़काया। वह तो आगे ही उनसे जला बैठा था, उसने नवाब सरहिन्द, पंजाब के सभी अधिकारियों, पहाड़ी हिन्दू राजाओं और शाही सेना को साथ लेकर चैत्र मास संवत् 1761 में आनंदगढ़ पर आक्रमण कर दिया। एक लाख से अधिक सेना गुरु साहब का चिह्न तक मिटाने पर तुल गई।

यह सेना आनन्दगढ़ पर बादलों की भांति चारों ओर से छा गई। बड़ा घोर युद्ध छिड़ा। गुरु साहब के तीरों ने बड़े-बड़े मुगल सरदारों को सदा के लिए सुला दिया। दिन तो दिन रात को भी सिख वीर उन्हें चैन से न बैठने देते। इस प्रकार बहुत सारी मुगल सेना मारी गई। दो सप्ताह बीतते-बीतते दुर्ग के भीतर खाने का सामान समाप्त हो गया।

गुरु साहब ने अपने सैनिकों को कहा, 'किसी न किसी तरह से कुछ दिन और काट लो, हम अवश्य जीतेंगे।' परन्तु भूखे रहना बड़ा कठिन होता है। बहुत-से सैनिकों ने स्पष्ट कह दिया, 'गुरुदेव ! इस तरह भूख से तड़प-तड़पकर मरने को हम तैयार नहीं हैं। हमें आज्ञा दीजिए कि शत्रु से अन्तिम बार दो-दो हाथ कर सकें।'

गुरु साहब न माने। उन्होंने कहा, 'अच्छा! आपमें से जो जाना चाहे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दे कि आज से हमारा गुरु-शिष्य का नाता समाप्त होता है और फिर जो चाहे करें।' भूखी-प्यासी सेना ने प्रतिज्ञा-पत्र लिख डाले और शत्रु से लड़ते-भिड़ते आनन्दगढ़ से बाहर निकल गए।

अब गुरु साहब के पास केवल 50 देशभक्त वीर बचे। आधी रात के समय व्यूह बनाकर गुरु साहब अपनी माता, धर्मपत्नी और पुत्रों को साथ ले आनन्द-गढ़ को सदा के लिए छोड़ गए। मुगल सेना ने देखा तो वह उनपर टूट पड़ी। पर गुरु गोविन्दसिंह सरीखे तीरन्दाज़ का पार पाना बड़ी टेढ़ी खीर था। सिख वीर लड़ते-लड़ते बढ़ते गए। मुगल सेना वैसे तो उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकी, परन्तु गुरु साहब और उनके दो पुत्र एक ओर निकल गए। गुरु साहब की माता और दो पुत्र दूसरी ओर निकल गए। गुरु साहब की धर्मपत्नी इन सब से अलग हो गई और दिल्ली में जाकर एक भक्त के घर आश्रय लिया।

गुरु साहब और उनके दो पुत्र रातों-रात चमकौर दुर्ग जा पहुंचे। यहां भी मुगल सेना इनका पीछा करती आ पहुंची और दुर्ग को घेर लिया। यहां गुरु साहब के पास कुछ और वीर सिख आ पहुंचे। गुरु साहब के बड़े

पुत्र अजीतसिंह ने पिता से प्रार्थना की, 'पूज्य पिता जी, मुझे आज्ञा दीजिए ताकि शत्रुओं से लोहा लेकर वीरगति प्राप्त करूं।' पिता ने अपने हाथ से पुत्र को कवच आदि बांधकर शत्रु से लड़ने भेजा। कुछ वीर सैनिकों को साथ ले 18 वर्षीय कुमार असंख्य शत्रु-सेना पर टूट पड़ा। उस सिंह सरीखे नवयुवक की तलवार बिजली की भांति चमक उठी। वह देश का दीवाना मातृभूमि के रक्षक गुरु गोविन्दसिंह जी का लाडला पुत्र शत्रु सेना को गाजर-मूली की तरह काटने लगा। उसने कई शत्रु सरदारों को भूमि पर सुला दिया। चारों ओर से शत्रु-सेना से घिरे हुए उस वीर कुमार का युद्ध देखने योग्य था। अन्त में शत्रु की ओर से एक साथ ही कई गोलियां उसके शरीर पर आ लगीं और वह सदा के लिए युद्ध-भूमि में सो गया। दुर्ग के ऊपर से गुरु साहब यह सब देख रहे थे। उनके मुख से निकल पड़ा, 'धन्य हो पुत्र ! तुमने देश और जाति के नाम को चार चांद लगा दिए।'

यह देख उसके छोटे भाई जोरावरसिंह से न रहा गया। वह पिता के चरणों में गिर पड़ा और बोला, 'पूज्य पिताजी ! मुझे भी अपने भ्राता के पास जाने दीजिए।' वीर गुरु ने अपने दूसरे पुत्र को भी अपने हाथों से मृत्यु के मुंह में धकेल दिया। वह 15 वर्ष का वीर

बालक पांच वीर सिक्खों को साथ ले शत्रु-सेना पर जा झपटा। मुगल सेना ने समझा कि कहीं यह पागल तो नहीं हो गया है। परन्तु उन्हें पता नहीं था कि आर्य-जाति के बालक मृत्यु को खेल समझते हैं। भला जिस धर्म का सिद्धांत है कि जैसे पुराने वस्त्र छोड़कर नये वस्त्र पहने जाते हैं, वैसे ही नये दूसरे शरीर भी मिल जाते हैं—ऐसे संस्कारों में पले सिंह-बालक भला मृत्यु को क्या समझें ! हां, तो वीर बालक जोरावर-सिंह ने देखते ही देखते चार-पांच शत्रु सरदारों को मार गिराया। अब तो क्रोध में भर मुगल सैनिकों ने उसे घेर लिया। एक शत्रु सैनिक ने आगे बढ़ उसकी एक भुजा काट डाली। फिर भी वह सिंह बालक लड़ता ही रहा। दूसरी चोट उसके कंधे पर पड़ी और वह बालक 'सतश्री अकाल' की गर्जना कर स्वर्ग सिधार गया। गुरु साहब ने अपने दूसरे पुत्र को भी जाति की रक्षा के लिए न्योछावर कर दिया। धन्य हो गुरु गोविन्द-सिंह ! यह घटना मार्गशीर्ष सुदि 9, संवत् 1761 की है।

अपने पुत्रों को बलिदान करने के बाद गुरु साहब ने अपनी भी आहुति देने का निश्चय किया। परन्तु सैनिकों ने समझाया, 'गुरुदेव ! आपको तो किसी न किसी तरह से जीवित रहना चाहिए, ताकि जो देश-

रक्षा का पौधा आपने लगाया है वह फूले और फले। आपके बिना कोई भी इसकी रक्षा न कर सकेगा!'

गुरु साहब मान गए।

विपत्ति के दिन

आधी रात के समय जब हाथ को हाथ नहीं सूझता था, गुरु साहब दुर्ग से निकल पड़े। गुरु साहब सुरक्षित जा सकें, इसलिए कुछ वीर सैनिकों ने बाहर निकल शोर मचा दिया, 'गोविन्दसिंह भाग रहा है दौड़ो, पकड़ो।' जिस ओर गुरुजी को जाना था, उससे उल्टी दिशा में वे शोर मचाते हुए भाग खड़े हुए। अंधेरा तो गहरा था ही, मुसलमान सेना ने समझा कि कोई हमारा साथी ही बोल रहा है। फिर क्या था, अनगिनत यवन सेना उसी ओर दौड़ पड़ी। इस तरह इधर तो गुरुजी का मार्ग साफ हो गया और उधर वे देश के परवाने वीर सैनिक शत्रुओं के हाथों बड़ी निर्दयता से काट डाले गए।

गुरु साहब थोड़े-से देशभक्त सैनिकों को ले मालवा की ओर बढ़े। बड़ी-बड़ी विपत्तियों को सहन करते हुए छुपते-छुपते आप एक घने जंगल में जा पहुंचे। थकावट से चूर आप एक शमी वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। यहां पर 'जंडा साहब' नाम का गुरुद्वारा

आज भी आपके बलिदान की याद दिलाता है। इस समय आप अकेले रह गए थे। सभी साथी सैनिक बिछुड़ गए थे। यवन सेना आपका पीछा करते-करते यहां तक आ पहुंची। शोर सुनकर आपकी आंखें खुलीं, तो चल पड़े। यह वन कांटेदार झाड़ियों से भरा था। आपका शरीर स्थान-स्थान पर छलनी हो गया और रक्त की धारा बह निकली।

गुरुजी वन से बाहर निकले, तो सायंकाल हो रहा था। मार्ग का पता नहीं लग रहा था। एक झाड़ी के पास ही रात बिताई। इस स्थान पर 'झाड़ी साहब' नाम का एक गुरुद्वारा है।

प्रातःकाल होते-होते अपने दयालु जगदीश्वर को लाख-लाख धन्यवाद दिया और चलते-चलते मछवाड़ा ग्राम में पहुंचे। यहां के दो पठानों ने गुरु साहब की दिल खोलकर आवभगत की।

यहां भी चारों ओर मुगल सेना का जाल बिछा हुआ था। गुरु साहब ने नीले रंग के मौलवियों जैसे कपड़े पहन लिए और उनकी रक्षा के लिए वे दोनों पठान भी चले। मुसलमानों में यह प्रथा है कि वे अपने पीरों को कंधे पर उठाकर चलते हैं। गुरु साहब को भी खाट पर बिठा इन सज्जन पठानों ने कंधे पर उठा लिया।

चलते-चलते यह मंडली घनगाली ग्राम में पहुंची। यहां एक झंडा नामक लुहार रहता था। वह अच्छा कारीगर था। गुरु साहब ने उससे कई शस्त्र मोल लिए। उस लुहार ने अपनी ओर से एक दोनली पिस्तौल, एक दोमुट्ठी तलवार, एक बढ़िया कमान और 22 तीर गुरुजी को भेंट किए।

यहां से चलने पर फिर एक बार मुगल सैनिकों से भेंट हो गई। उन्हें विश्वास दिलाने के लिए उनके साथ भोजन भी किया। यहां से चलकर आप ग्राम देहर में जा पहुंचे। यहां आप महन्त कृपालदास को मिले। मुगलों के भय से उसने उन्हें अपने यहां नहीं टिकाया। गुरु साहब के मुख से निकल पड़ा, 'तुम्हारे दिन भी निकट ही हैं।' हुआ भी ऐसा ही। शीघ्र ही उसी ग्राम में एक डाका पड़ा। राज्य कर्मचारियों ने समझा कि इसमें महन्त जी का हाथ है। अतः उन्हें फांसी दे दी गई। महात्माओं से विरोध करने वालों की ऐसी ही दशा होती है।

यहां से चल गुरुजी रायकोट पहुंचे। यहां आपका खूब सम्मान हुआ। एक अरबी घोड़ा और कई शस्त्र आपको भेंट में मिले। यहां बहुत-से सिख, सैनिक भी आ मिले।

छोटे पुत्रों का दीवार में चुना जाना

आपको याद होगा कि आनन्दगढ़ से निकलते समय गुरुजी की माता और दो छोटे पुत्र उनसे बिछुड़ गए थे। इस समय इनके साथ कुछ सैनिक और गंगू रसोइया था। जब ये लोग बहुत दूर निकल गए और गुरुजी का पता न लगा, तो वह रसोइया बोला, 'पूज्य माताजी ! मेरा घर पास ही है। आप कुछ दिन वहीं टिकें। फिर गुरुजी का पता लगने पर हम लोग वहीं पहुंच जाएंगे।'

गुरुजी की वृद्धा माता और दो पुत्र गंगू रसोइये के घर जा पहुंचे। गुरु परिवार के आभूषणों की पेटी वृद्धा माता के पास थी। इसे देख रसोइये के मुंह में पानी भर आया। उसने उसे एक रात चुरा लिया। इनके होते इन आभूषणों को कैसे पचा सकूंगा, इस विचार ने उसकी बुद्धि पर परदा डाल दिया। वह वहां से चुपके से उठा और काजी के पास जा सब कुछ बता दिया।

थोड़ी ही देर में यवन सैनिक उसके घर में आ पहुंचे और वृद्धा माता तथा सुकुमार बालकों को बांधकर ले चले। उसी समय वृद्धा माता ने उन सैनिकों को बतलाया कि मेरे बहुमूल्य आभूषण इसने चुराए हैं। इसपर घर की तलाशी ली गई और वह पेटी भी उसके

हाथ से गई। मुसलमान सैनिक उस देशद्रोही ब्राह्मण को भी बांधकर ले गए।

नवाब सरहिन्द के पास गुरु साहब की माता और दोनों पुत्रों को पहुंचा दिया गया। अपने शत्रु के पुत्रों को हाथ में आया देख वह फूला न समाया।

उसने गुरु-पुत्रों को दरबार में बुलाया और कहा कि तुम मुसलमान हो जाओ। मैं तुम्हारा विवाह राजकुमारियों से करा दूंगा और इस तरह सुख भोगो। इसपर नौ वर्षीय बड़ा भाई जुझार सिंह की भांति गरजकर बोला, 'ऐसी बात मुंह से मत निकालो! अपने धर्म में ही जीने और मरने से प्राणी का कल्याण होता है।'

फिर उन दोनों बालकों को अलग-अलग करके डराया-धमकाया गया और कई तरह के प्रलोभन दिए गए, परन्तु उन गुरु-पुत्रों ने एक न मानी।

मुसलमान शासक हैरान था कि ये छोटे-छोटे बालक कैसे दृढ़ हैं! दरबार बुलाया गया और सोचा गया कि इन बच्चों के साथ क्या किया जाए। नवाब मलेरकोटला ने कहा, "नहीं, इन छोटे बालकों का क्या दोष है! इन्हें कोई दंड नहीं देना चाहिए।"

नवाब सरहिन्द तो गुरु गोविन्दसिंह जी का कट्टर शत्रु था। उसने दो पठान सैनिकों को आज्ञा दी कि इन

बालकों का सिर काट दो। यद्यपि इन दोनों पठानों के पिता गुरु साहब के हाथों युद्ध में मारे गए थे, परन्तु वे बोले, 'नहीं, ये तो बच्चे हैं, इनको हम नहीं मारेंगे। हमारी शत्रुता तो इनके पिता से है।'

इसपर भी नवाब की आंखें नहीं खुलीं। उसने एक अन्तिम ढंग सोचा। दुर्ग की कुछ दीवार गिरा दी गई। उन दोनों बालकों के पांवों से लेकर ईंटों की चिनाई शुरू कराई। अब दीवार छोटे भाई के गले तक पहुंची, तो बड़े भाई की आंखों में आंसू आ गए। नवाब ने समझा, बालक मृत्यु से डर गया है। उसने कहा, 'बालक ! अब भी समय है, चाहे तो अपने आपको बचा सकते हो।'

सिंह बालक जुझारसिंह बोला—

'चिन्ता ताकि कीजिए, जो अनहोनी होय ॥
यह मारग संसार में, नानक थिर नहिं कोय।'

इसपर नवाब ने पूछा, 'फिर तुम्हारी आंखों में आंसू क्यों ?' वह वीर बालक बोला, 'मेरा जन्म पहले हुआ, देश पर बलिदान मुझे पहले होना चाहिए। परन्तु यह सौभाग्य मेरे छोटे भाई को पहले मिल रहा है, वही दुःख सता रहा है।'

यह सुन सभी लोगों के मस्तक श्रद्धा से झुक गए

परन्तु नवाब बज़ीरखां का हृदय न पसीजा। उसने उन बालकों को जीवित ही दीवार में चिनवा दिया। 'ओंकार' का नाद गुंजाते हुए वे दोनों भाई धर्म की वेदी पर बलिदान हो गए। यह घटना 13 पौष, संवत् 1761 की है।

अपने पौत्रों का बलिदान सुनकर गुरु तेगबहादुर की वीर पत्नी और गुरु गोविन्दसिंह की माता यह दुःख न सह सकीं और छत से कूदकर स्वर्ग सिधार गईं।

प्रतिवर्ष सरहिन्द में इन बाल-शहीदों की याद में सहस्त्रों लोग अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हैं।

चालीस वीर

गुरु साहब को जब अपने छोटे पुत्रों के बलिदान की सूचना मिली तो उनकी आंखों में प्रसन्नता के आंसू भर आए और बोले, 'बड़े भाग्य हैं उन बच्चों के जो धर्म पर बलिदान हुए।' वहां पर बैठे सभी लोग नन्हें-नन्हें बालकों की इस निर्दय मृत्यु का समाचार सुन कांप उठे। गुरुजी गम्भीर होकर बोले, 'भाइयो! जिस राज्य में इस तरह के अत्याचार होते हैं, वह शीघ्र ही संसार से मिट जाता है। नवाब सरहिन्द शीघ्र ही मारा जाएगा। मुस्लिम राज्य अब मिटने ही वाला है।'

रायकल्ला का नवाब गुरुजी का भक्त था, वह इस सभा में बैठा था। वह बड़ी नम्रता से बोला, 'गुरुदेव ! हम लोग तो आपके सेवक हैं। क्या हम लोग भी मारे जाएंगे ?' गुरु साहब बोले, 'नहीं, तुम जैसे सज्जन तो फूलेंगे और फलेंगे !' गुरु साहब ने उसे एक तलवार भेंट की।

गुरु साहब यहां से चल दीनाग्राम होते हुए खामगढ़ दुर्ग में जा पहुंचे। अब तो गुरु साहब का समाचार मालवा के कोने-कोने में फैल गया। गुरुभक्तों ने स्थान-स्थान से आकर उन्हें अच्छे-अच्छे वस्त्र और खूब धन भेंट किया।

गुरु साहब कवि भी थे। हिन्दी, संस्कृत और फारसी में उनकी अच्छी-अच्छी कविताएं मिलती हैं। उन्होंने फारसी कविता में छोटे-छोटे पुत्रों के बलिदान का चित्र खींचा। इसका नाम 'ज़फरनामा' रखा गया। इसकी एक प्रति सम्राट् औरंगज़ेब को भेजी गई, परन्तु उसने ध्यान न दिया।

गुरु साहब कोट कपूरा आ विराजे। यहां इनकी खूब आवभगत हुई। उधर नवाब सरहिन्द सेना एकत्र कर फिर गुरुजी पर चढ़ दौड़ा। बगहां के पास खदराना नामक तालाब के किनारे दोनों में युद्ध हुआ।

पाठकों को याद होगा कि आनन्दगढ़ छोड़ने से

पहले बहुत-से सैनिक भूख-प्यास से दुखी होकर गुरुजी का साथ छोड़ गए थे और उन्होंने प्रतिज्ञा-पत्र लिखे थे कि आज से हम गुरुजी के शिष्य नहीं रहे। जब वे लोग अपने-अपने घरों में पहुंचे, तो सभीने उनका अपमान किया और कहा कि विपत्ति में गुरुसाहब को छोड़ने वाले कायरो, डूब मरो। इसपर वे बड़े लज्जित हुए। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि हम अपने पाप का प्रायश्चित करेंगे।

इस समय जब कि नवाब सरहिन्द की सेनाएं गुरु साहब पर आक्रमण करने को ही थीं कि ये चालीस सैनिक चुपचाप गुरुजी की सेवा के आगे आ खड़े हुए। ये परवाने इस वीरता से लड़े कि मुगल सेना के छक्के छूट गए। ये चालीसों वीर एक-एक करके मारे गए, परन्तु शत्रु को आगे न बढ़ने दिया। उधर पानी की कमी के कारण भी मुगल सेना प्यास से व्याकुल हो गई। इसपर नवाब सरहिन्द को लौटना पड़ा।

गुरु साहब ने आगे बढ़कर उन वीर मृतकों को श्रद्धा के फूल भेंट किए। उनमें से एक सैनिक अभी सांस ले रहा था। वह बड़ी कठिनता से कह पाया, 'गुरुदेव! हमारे प्रतिज्ञा-पत्र फाड़ दीजिए।' गुरुजी ने उसी समय उन पत्रों को फाड़ डाला। वह सैनिक भी संतोष पाकर

स्वर्ग सिधार गया। गुरुजी ने इन्हें मुक्त वीरों की पदवी दी। यही स्थान मुक्तसर के नाम से प्रसिद्ध है। गुरुजी ने अपने हाथ से चन्दन की चिताएं सजाकर उनका दाह-संस्कार किया।

गुरु साहब लोगों को उपदेश देते हुए भटिंडा पहुंचे। यहां पर उनकी पत्नी भी आ मिलीं। यहां पर दमदमा नामक गुरुद्वारा बना है। यहां से चलते-चलते आप पुस्कर तीर्थ जा पहुंचे।

इस बीच औरंगजेब मर गया। उसके पुत्रों में राजगद्दी के लिए युद्ध छिड़ गया। आज़मशाह ने धोखे से छोटे भाई कामबख्श को मरवा डाला। उधर बहादुरशाह ने सहायता के लिए गुरुजी की सेवा में प्रार्थना की। वे मान गए। शाही सेना तो आज़मशाह के साथ थी। दोनों भाइयों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। इधर गुरुजी के वीर सैनिक एक आम के बगीचे में छिपे थे। उन्होंने गुरुदेव की आज्ञा पा पीछे से आज़मशाह की सेना पर आक्रमण कर दिया। इस अचानक आक्रमण से मुगल सेना घबरा गई। गुरु साहब ने आगे बढ़ हाथी पर चढ़े आज़मशाह को एक तीर मारा। यह तीर उसकी छाती को चीरकर पार कर गया और शरीर लुढ़क गया। राजकुमार के मरते ही सेना भाग खड़ी हुई और बहादुरशाह विजयी हुआ।

बहादुरशाह ने बड़े आदर से गुरु साहब को मोती बाग में ठहराया और उनकी सहायता का बड़ा धन्यवाद दिया। गुरुजी बोले, 'अब तुम्हें चाहिए कि नवाब सरहिन्द और पंजाब के पहाड़ी राजाओं को मुझे सौंप दो।' इसपर बहादुरशाह ने कहा, 'महात्मन्! अभी तो मैं राज्य संभाल भी नहीं पाया, ऐसा करने से राज्य में गड़बड़ी हो जाएगी।' बहादुरशाह ने गुरुजी को बीस लाख मुद्राएं भेंट कीं।

बहादुरशाह के साथ-साथ गुरुजी ने दक्षिण की यात्रा की। राजपूताना, मालवा होते हुए उज्जैन जा पहुंचे। यहां दरबार हुआ। बहादुरशाह ने गुरु साहब की वीरता और उपकार की कहानी सबको सुनाई। बुरहानपुर तक गुरुजी और बहादुरशाह साथ-साथ गए।

बन्दा बहादुर

अब गुरु साहब बहादुरशाह का साथ छोड़ अकेले, खानदेश होते हुए नांदेड़ जा पहुंचे। यहां गुरुजी को पता चला कि माधवदास नाम का एक वैरागी है। वह बड़ा वीर है और उसकी जन्मभूमि पंजाब है। गुरुजी उसके पास पहुंचे और बोले, 'बन्दा! आज तुम्हारी जन्मभूमि तुम्हें पुकार रही है। दिन के उजाले में माताओं का

धर्म लूटा जाता है। नन्हें-नन्हें बच्चे बड़ी निर्दयता से काट दिए जाते हैं। उठो! अपने क्षत्रिय-धर्म का पालन करो और मातृभूमि की दासता की बेड़ियां काट डालो।'

गुरु साहब के वीरता-भरे शब्दों ने आग पर घी का काम किया। वह वीर उठा और तलवार हाथ में लेकर बोला, 'महात्मन्? आज्ञा कीजिए और फिर देखिए कि किस तरह यह वैरागी शत्रुओं की छाती पर मूंग दलता है।'

गुरु साहब ने 50 वीर सैनिकों के साथ उसे पंजाब भेज दिया। उन्होंने अपने सब भक्तों और शिष्यों को पत्र लिखा कि बन्दा बहादुर की पूरी-पूरी सहायता करो। वह जहां भी पहुंचा, लोगों ने उसकी भरपूर सहायता की। पंजाब की भूमि में पहुंच इस वीर के झंडे तले सहस्रों सैनिक इकट्ठे हो गए। कई युद्ध लड़े गए, मुसलमान शासकों को नाकों चने चबवाए गए। सरहिन्द की ईंट से ईंट बजा दी गई। फाल्गुन मास, संवत् 1764 में सरहिन्द जीता गया। वहां के नवाब और उसके साथियों को मृत्यु के घाट उतार दिया गया। श्रद्धा के फूल भेंट किए और वहीं उनकी याद में एक गुरुद्वारा बनाया गया।

बन्दा बहादुर ने पंजाब के 28 परगनों से मुसलमान शासकों को हटाकर हिन्दू-सिखों को अधिकार दिया। सतलुज और यमुना नदी के बीच का बहुत-सा प्रदेश स्वतन्त्र हो गया।

इन दिनों गुरु गोविन्दसिंह जी गोदावरी नदी के तट पर एक सुन्दर बाग और गुरुद्वारा बनवा रहे थे, कि ज्येष्ठ बदी 13, संवत् 1764 को बन्दा बहादुर के भेजे हुए दो सिख सैनिकों ने सरहिन्द-विजय की सारी कहानी सुनाई। जिस स्वतन्त्रता के पौधे को उन्होंने बड़े यत्न से सींचा था, उसमें फल लगा देख उन्होंने सन्तोष की सांस ली और भगवान को लाख-लाख धन्यवाद दिया। उनके शिष्यों ने बड़ी खुशी मनाई। 'बुराई का किस तरह हाथों-हाथ फल मिलता है, इसपर उस दिन गुरुजी ने उपदेश दिया।

इधर दिल्ली में बादशाह बहादुरशाह वीर वैरागी की सफलता सुन-सुनकर मन ही मन कुढ़ रहा था। इस संकट को मिटाने के लिए सं० 1766 में बादशाह ने अब्बुल समन्दखां को तीस हज़ार विशाल सेना देकर दिल्ली से रवाना किया और दूसरे अफसरों को भी आज्ञा दे दी कि वे अपनी फौज वैरागी के विरुद्ध भेजें। विशाल सेना ने वैरागी को चारों ओर से घेर लिया। निकलने का कोई रास्ता न था, अतः सेना तथा खाद्य-

सामग्री धीरे-धीरे कम होने लगी और अन्त में वीर बन्दा वैरागी तथा उसके अनेक साथियों को अब्दुल समन्दखां ने गिरफ्तार कर लिया। हिन्दुओं की आशाओं
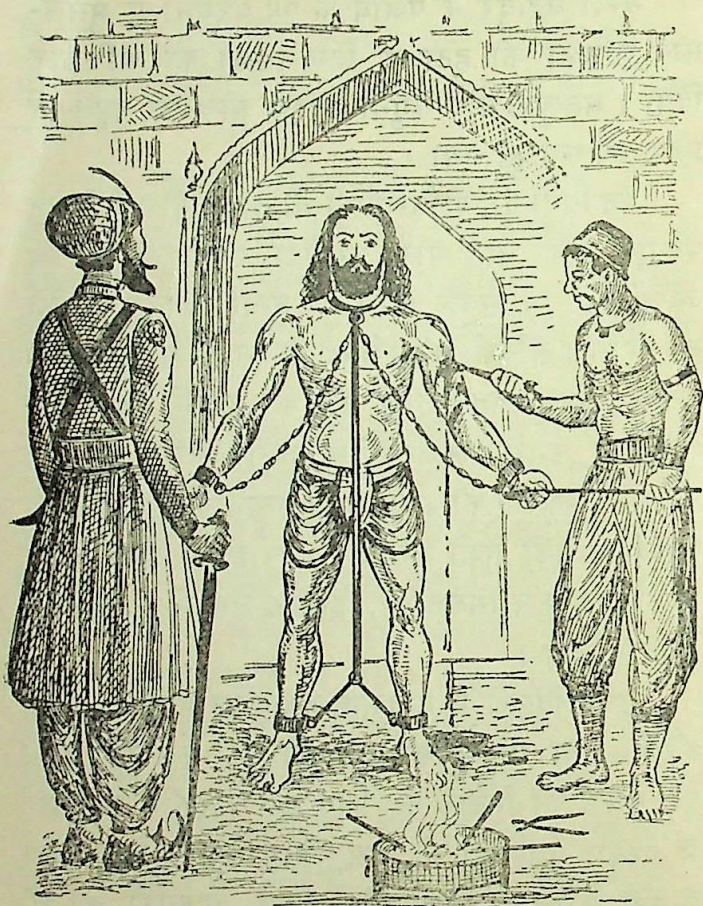
पर पानी फिर गया। चारों ओर हाहाकार होने लगा।

वीर वैरागी तथा उसके साथियों को दिल्ली लाया गया। काज़ियों के सम्मुख उन्हें पेश किया गया। वीर वैरागी के सामने प्रस्ताव रखा गया कि यदि वे मुसलमान हो जाएं तो उन्हें प्राणदान दिया जा सकता है। वैरागी ने गरजकर उत्तर दिया, 'प्राणदान या प्राणदण्ड तुम्हारे हाथ में नहीं है, वह तो भगवान की आज्ञा से होता है।'

उनके साथियों को भी अनेक प्रकार के कष्ट दिए गए। तत्पश्चात लोहे की गरम सलाखों से वैरागी को रह-रहकर मारना प्रारम्भ किया गया। तपे हुए लाल चिमटों से उनके मांस के लोथड़े बाहर निकाल दिए गए। यहां तक कि शरीर की हड्डियां दिखाई देने लगीं, किन्तु उस वीर ने अन्तिम दम तक उफ न निकाली। धन्य हो वीर वैरागी !

मृत्यु

गोदावरी के तट पर गुरुजी के भक्त ने नगीना-घाट बनवा दिया। यहां नित्य सायं-प्रातः कथा होती थी और प्रसाद भी बंटता था। हिन्दू-मुसलमान सभी आपके उपदेश पाकर निहाल हो जाते।

इस समय भी गुरुजी के कई मुसलमान सेवक
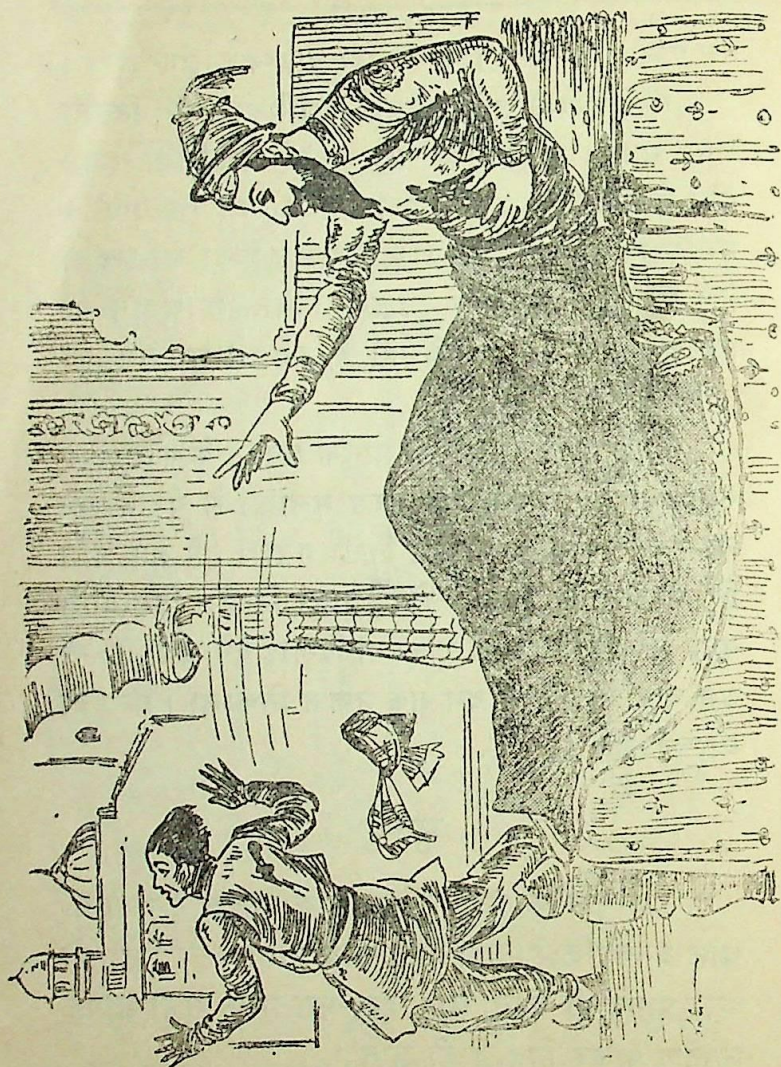
और भक्त थे। एक पैंदे खां नामक पठान को गुरु साहब ने युद्ध में मारा था, उसके दो पुत्र अकाउल्लाखां और गुलखां भी गुरुजी के पास आकर रहने लगे। ये दोनों ऊपर से बड़ी श्रद्धा से गुरुजी की सेवा करते थे, पर हृदय में पाप था। वे सदा ऐसे समय की खोज में लगे रहते कि गुरु साहब को अकेले पाएं और मार डालें। भादों बदी 4, संवत् 1765 को सायंकाल के समय गुरुजी पलंग पर लेटे थे और अकेले ही थे। इसी समय उनमें से एक पठान ने गुरुजी के पेट में कटार भोंक दी। गुरुजी ने वही कटार अपने पेट से निकाल कर भागते हुए पठान की पीठ पर दे मारी जिससे वह मर गया। दूसरा पठान भाई पकड़ा गया, जिसे सिखों ने मार डाला।

गुरुजी के घाव पर टांके लगाकर महरम-पट्टी की गई। शीघ्र ही घाव भर गया। इसी बीच बहादुर-शाह की भेजी एक कमान पहुंची, जिसे देख सभी चकित हुए कि इसे चलाना तो दूर, इसे कोई अकेला उठा भी नहीं सकेगा। गुरुजी ने सबके देखते-देखते उस कमान पर तीर चढ़ाकर उसे चला दिया। लोग गुरुजी का बल देख धन्य-धन्य कह उठे।

इस कमान को चढ़ाने में गुरुजी को बहुत बल लगाना पड़ा। उनके घाव से रक्त बहने लगा। गुरुजी

का शरीर दुर्बल होने लगा। अपना अन्तिम समय देख गुरुजी ने सब शिष्यों को बुलाया। आप नहा-धोकर नये कपड़े पहनकर सबके सामने आ गए। वे वीरासन लगाकर बैठ गए और बोले, 'भाइयो! मैं जा रहा हूं। वहीं जा रहा हूं, जहां सबको एक न एक दिन जाना है। कोई रोते हुए जाता है, कोई हंसते-हंसते। मैं हंसते हुए जा रहा हूं, क्योंकि मैंने जिस पौधे को बड़े यत्न से सींचा था, आज उसमें फल आ गया है। आप सबको चाहिए कि ईर्ष्या-द्वेष को छोड़ आपसी भेदों को मिटाकर एक हो जाओ और मातृभूमि को स्वतन्त्र कराओ। मेरे लिए चंदन की चिता बनाकर इस शरीर को जला देना। जलने के बाद मेरी हड्डियों को मत छूना, वे अपने-आप मिट्टी में मिल जाएंगी। याद रखो, मेरी समाधि कदापि नहीं बनाना।' ये शब्द कहते-कहते उन्होंने आंख मूंद लीं। और भगवान् को याद करते-करते शरीर छोड़ दिया। वह घटना 8 कार्तिक, संवत् 1675 की है। आप 41 वर्ष 9 महीने 15 दिन जिए। सहस्र लोगों ने उस धर्म-रक्षक गुरु का दाह-संस्कार चन्दन की लकड़ियों से किया, जिसकी सुगन्ध चारों ओर फैल गई।

गुरु गोविन्दसिंह जी के मना करने पर भी महाराजा रणजीतसिंह ने संवत् 1889 में इसी स्थान पर

अविचल नगर में एक मन्दिर बनवाया, जो हैदराबाद से 75 मील दूर गोदावरी नदी के तट पर है। यहां सहस्रों यात्री आते हैं और अपने श्रद्धा के फूल उस महान् पुरुष को भेंट करते हैं। जिसने अपने पिता, चारों पुत्र और अपने-आपको धर्म की वेदी पर हंसते-हंसते बलिदान कर दिया।

संसार में सदा से वीर-पूजा होती आई है, और होती रहेगी। मेरे देश की होनहार सन्तानो ! यदि चाहते हो कि आज भी हम गुरु गोविन्दसिंह, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी और हरिसिंह नलुआ सरीखे वीर और धीर बन सकें तो प्रतिज्ञा करो कि हम इन महान् पुरुषों के चरणचिह्नों पर चलेंगे और मातृभूमि का मस्तक ऊंचा उठाएंगे।

●●●

मुद्रक : शिक्षा भारती प्रेस, शाहदरा दिल्ली 20880

सरल प्रेरणाप्रद जीवनियां

- झांसी की रानी
- रवीन्द्रनाथ टैगोर
- लाला लाजपतराय
- सरदार पटेल
- डा० राजेन्द्रप्रसाद
- विनोबा भावे
- जवाहरलाल नेहरू
- महात्मा गांधी
- हरिसिंह नलवा
- चन्द्रशेखर आजाद
- श्यामाप्रसाद मुखर्जी
- गुरु नानकदेव
- सुभाषचन्द्र बोस
- शिवाजी
- महाराणा प्रताप
- चाणक्य
- लोकमान्य तिलक
- श्रीकृष्ण
- स्वामी विवेकानन्द
- गणेशशंकर विद्यार्थी
- गोस्वामी तुलसीदास
- डा० विश्वेश्वरैया
- हमारे राष्ट्रनिर्माता
- स्वामी श्रद्धानन्द
- सरदार भगतसिंह
- स्वामी रामतीर्थ
- गुरु गोविन्दसिंह
- सदाचारी बच्चे
- महापुरुषों का बचपन
- वीर पुत्रियां
- लालबहादुर शास्त्री
- आदर्श बालक
- आदर्श देवियां
- सच्ची देवियां
- सुन्दर कथाएं
- भारत के महान ऋषि
- अच्छे बच्चे
- गौतम बुद्ध
- सम्राट अशोक
- वीर हनुमान
- हमारे स्वामी
- श्री अरविन्द
- वीर सावरकर
- महर्षि वाल्मीकि
- महाकवि कालिदास
- इन्दिरा गांधी
- डा० जाकिर हुसेन
- ये महान कैसे बनें

शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली